IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

कुमाउं में स्वाधीनता संघर्ष और कुली बेगार प्रथा एक अवलोकन

डॉ. राजेश चन्द्र पालीवाल
प्राचार्य
एच.वी.एम्.पी.जी.कॉलेज रायसी (हरिद्वार)

जन आन्दोलन के रूप में अनेक लोगो की विचारधारा राष्ट्रीय प्रेम की उर्जा का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में एक अनूठा योगदान था, इस आन्दोलन में बुजूर्ग, जवान, बच्चे, स्त्री -पुरुष, गरीब अमीर और आम जनमानस सभी शामिल थे | उत्तराखंड के लोग भी इस राष्ट्रीय आंदोलन में कूदे और ब्रिटिश हुकूमत को नाकों तले चने भी चबवाये | उत्तराखंड में स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ सामजिक बुराइयों के खिलाफ भी आन्दोलन हुए |

वर्तमान राज्य उत्तराखण्ड जिस भौगोलिक क्षेत्र पर विस्तृत है उस इलाके में ब्रिटिश शासन का इतिहास उन्नीसवी सदी के दूसरे दशक से लेकर भारत की आज़ादी तक का है। उत्तराखण्ड में ईस्ट इंडिया कंपनी का आगमन 1815 में हुआ। इससे पहले यहाँ नेपाली गोरखों का शासन था। यह भी माना जाता है कि गोरखा शासकों द्वारा इस इलाके के लोगों पर किये गये अत्याचारों को देखकर ही अंग्रेजों का ध्यान इस ओर गया।[1] हालाँकि अंग्रेजों और नेपाली गुरखाओं के बीच लड़े गये गोरखा युद्ध के अन्य कारण भी थे। अल्मोड़ा में 27 अप्रैल 1815 को गोरखा प्रतिनिधि बमशाह और लेफ्टिनेंट कर्नल गार्डनर के बीच हुई एक संधि के बाद नेपाली शासक ने इस क्षेत्र से हट जाने को स्वीकारा और इस क्षेत्र पर ईस्ट इण्डिया कंपनी का अधिकार हो गया।[1][2] अंग्रेजों का इस क्षेत्र पर पूर्ण अधिकार 4 अप्रैल 1816 को सुगौली की सन्धि के बाद इस पूरे क्षेत्र पर हो गया और नेपाल की सीमा काली नदी घोषित हुई।[3] अंग्रेजों ने पूरे इलाके को अपने शासन में न रख अप्रैल 1815 में ही गढ़वाल के पूर्वी हिस्से और कुमायूँ के क्षेत्र पर अपना अधिकार रखा और पश्चिमी हिस्सा सुदर्शन शाहए जो गोरखों के शासन से पहले गढ़वाल के राजा थेए को सौंप दिया जो अलकनंदा और मंदाकिनी नदियों के पश्चिम में पड़ता था।[4]

इस प्रकार गढ़वाल दो हिस्सों में बंट गयाए पूर्वी हिस्सा जो कुमाऊँ के साथ ब्रिटिश भारत का हिस्सा बन गया "ब्रिटिश गढ़वाल" कहलाया और पश्चिमी हिस्सा राजा सुदर्शनशाह के शासन में इसकी राजधानी टिहरी के नाम पर टिहरी गढ़वाल कहलाने लगा। टिहरी को राजा सुदर्शन शाह द्वारा नयी राजधानी बनाया गया था क्योंकि पुरानी राजधानी श्रीनगर अब ब्रिटिश गढ़वाल में आती थी।[5] ब्रिटिश गढ़वाल को बाद में 1840 में यहाँ पौड़ी में असिस्टेंट-कमिशनर की नियुक्ति के बाद इस क्षेत्र को पौड़ी-गढ़वाल भी कहा जाने लगाए जबकि इससे पहले यह नैनीताल स्थित कुमाऊँ कमिश्नरी के अंतर्गत आता था। दूसरी ओर कुमाऊँ क्षेत्र के पुराने शासक चंद राजा को यह अधिकार नहीं मिला और यह ब्रिटिश भारत का हिस्सा बन गया और ब्रिटिश चीफ़-कमीशनशिप के अंतर्गत शासित होने लगा[4] जिसकी राजधानी (कमिश्नरी) नैनीताल में स्थित थी। भारत की आज़ादी तक टिहरी रजवाड़ा और ब्रिटिश शासन के अधीन रहा यह क्षेत्र आजादी के बाद उत्तर प्रदेश राज्य में मिला दिया गया।

1856 से 1884 तक पौड़ी-गढवाल और कुमाऊँ क्षेत्र हेनरी रैमजे के शासन में रहा तथा यह युग ब्रिटिश सत्ता के शक्तिशाली होने के काल के रूप में पहचाना गया। जो भी प्रभाव यहाँ भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के पड़े उन्हें कमिश्नर हेनरी रैमजे ने कठोरता से समाप्त कर दिया।[1] इस दौरान कुमाऊँ के काली क्षेत्र (पूर्वी) में कालू मेहरा द्वारा गुप्त संगठन बनाये जाने और विद्रोह की तैयारियों के प्रमाण मिलते हैं और कालू मेहरा को उत्तराखण्ड का प्रथम स्वतंत्रता सेनानी माना जाता है।[1] हालाँकि कुछ विद्वान यह मानते हैं कि कालू मेहरा और उसके साठी अवध के विद्रोहियों के सम्पर्क में अवश्य थे किन्तु वे अंग्रेज़ों और अवध के बागियों दोनों से गुप्त रूप से मिले रहकर जिसकी जीत हो उसके साथ जाने की मंशा रखते थे। यह भी

तर्क दिया जाता है कि वे केवल आर्थिक लाभ के लिये दोनों पक्षों से सम्पर्क में थे और स्वतंत्रता से उनका कुछ लेना देना नहीं था।[6]

कुमाऊँ कमिश्नरी के मैदानी क्षेत्र अवश्य इस दौरान ग़दर से प्रभावित रहे जो कमिश्नर रैमजे के लिये चिंता का विषय बने। जुलाई 1857 में बकरीद के मौके पर रामपुर में विद्रोह भड़कने और उससे नैनीताल के प्रभावित होने की आशंका से रैमजे ने ब्रिटिश औरतों और बच्चों को नैनीताल से हटा कर अल्मोड़ा भेज दिया थाए हालाँकि रामपुर के नवाब अंग्रेज़ों के सहयोगी थे । [6] नैनीताल पर कब्ज़ा करने का प्रथम प्रयास सितंबर 1857 में हुआ और 17 सितम्बर 1857 की एक घटना में मैदानी भाग में स्थित हल्द्वानी शहर पर विद्रोहियों ने कब्ज़ा भी कर लिया था जिसे बाद में अंग्रेजों ने वापस हासिल कर लिया।[1] इस आक्रमण का नेतृत्व काला खान नामक विद्रोही कर रहा था। [6]

उत्तराखंड में स्वाधीनता आन्दोलन में भागीदारी की शुरुवात सन 1857 के स्वतंत्रता संघर्ष से आरम्भ हो जाती हैं | 1857 में तत्कालीन कुमाऊँ कमिशनर हेनरी रामजे ने विद्रोह की सूचना मिलते ही कुमाऊँ में शांति भंग की आशंका को देखते हुए मार्शल ला लगा दिया था | 10 जून 1857 को तराई क्षेत्र में विद्रोह की आग फैल गयी | रामपुर और मुरादाबाद से आकर बहुत से विद्रोहियों ने लूटमार शुरू कर दी रामजे ने विद्रोहियों का दमन करने के लिए सेना भेजी जिसमें कई विद्रोही मारे गए | इस अवधि में रूहेलखंड के नबाब खान बहादुर खान की सेना ने कुमाऊँ पर अनेक आक्रमण किये | 17 सितम्बर को खान की सेना ने हल्द्वानी पर अधिकार कर लिया,18 सितम्बर को अंग्रेजो ने खान की सेना को पराजित कर वापस भगा दिया | उत्तराखंड में स्थानीय संगठनो और उदार परत प्रेस की शुरुवात 1870 में अल्मोड़ा डिबेटिंग क्लब, 1868 के समय विनोद व् 1871 के अल्मोड़ा अख़बार के प्रकाशन के साथ हुई | उत्तराखंड में **स्थानीय वासियों ने लार्ड रिपन के समय 1876-80 में बने प्रेस एक्ट, आर्म्स एक्ट का विरोध एल्बर्ट बिल का समर्थन कर राष्ट्रीय स्तर पर अपना स्वर मिलाया |सौ साल पहले उत्तराखंड (तत्कालीन ब्रिटिश कुमाऊं) में कुली-बेगार की अपमानजनक प्रथा के खिलाफ हुआ आंदोलन अपनी सफल पराकाष्ठा पर पहुंचा था। उस आंदोलन के साथ जंगलात के हकों को बहाल कराने वाला आंदोलन भी चला था। ये दोनों आंदोलन स्वतंत्र भी थे और साथ-साथ भीए क्योंकि इनकी जनता और नेता एक थे। बेगार के अंतर्गत जबरन मुफ्त श्रम और मुफ्त सामग्री प्राप्त करने की व्यवस्था थी। उतार के अंतर्गत मूल्य देय होता थाए जो अधिकतर नहीं दिया जाता था। पटवारी और प्रधान इसके स्थानीय व्यवस्थापक थेए जो चुली-कुली (हर चूल्हे यानी परिवार से एक कुली) नियम के अनुसार हर परिवार से कुली मांगते थे। जमीनी बंदोबस्तों में मनमानी धाराएं डालकर बेगार को नियमबद्ध बना दिया गया था। जब पत्रों और काउंसिलों में बेगार की अति पर सवाल उठेए तो एक लाट ने यहां तक कहा था कि 'कुमाऊं से बेगार उठाने की मांग करना गोया चांद मांगना हो।'**

1916 में कुमाउं मंडल में राजनीतिक- सामाजिक आर्थिक चेतना का प्रसार करने के लिए कुमाउं परिषद् की स्थापना हुई | कुमाउं परिषद् का पहला अधिवेशन 1917 में जय दत्त जोशी के अधिवक्ता में अल्मोड़ा में हुआ दूसरा अधिवेशन 24-25 सितम्बर 1918 को हल्द्वानी में हुआ इसके अध्यक्ष तारा दत्त रौतेला थे | तीसरा अधिवेशन 22-24 दिसम्बर 1919 को कोटद्वार में हुआ इसके अध्यक्ष बद्री दत्त जोशी थे | कुमाउं परिषद ने जनता से निवेदन किया कि वे कुली बेगार ना दे |

उत्तराखंड में सामाजिक आंदोलनों में कुली बेगार आंदोलन का खासा महत्व रहा हैं | बेगार प्रथा का इतिहास अति प्राचीन हैंए वैदिक काल में राजदरबार में दासो से बेगार ली जाती थी | गढ़वाल के पंवार तथा कुमाउं के कत्युरी, चंद और गोरखाओं के शासनकाल में बेगारो की संख्या बढती गयी | सन 1815 में जब अंग्रेजों ने कुमाउं में अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया तब उन्हें पहाड़ी क्षेत्रों में सामान ले जाने व् आने जाने में कठिनाई होने लगी इस कारण उन्होंने स्थानीय लोगों को सामान ले जाने के लिए उनका प्रयोग किया | लेकिन इसके बदले उन्हें कोई भी पारिश्रमिक नहीं दिया जाता था | प्रारंभ में यह कार्य निम्म जातियों से कराया जाता था | लेकिन धीरे धीरे यह कार्य सभी जातियों से कराया जाने लगा | कुली बेगार प्रथा व्यवस्था केवल अंग्रेज अधिकारियो के सामान ढ़ोने व् उनके भोजन व्यवस्था तक ही सीमित नहीं थी वरन सड़कों, पुलों, सरकारी भवनों, पर्वतीय मार्गो तथा अन्य सरकारी व् निजी कार्यो के लिए भी भी कुली बेगार प्रथा को अपनाया जाता था | गलिन नामक अंग्रेज अधिकारी ने पहाड़ी कुलियों की जानकारी लेने हेतु सर्वेक्षण किया तथा यह पहला दस्तावेज था जिसने कुलियों की दशा को उजागर किया | इसी बीच बेगार प्रथा का विरोध होना शुरू हो गया 1827 में काली कुमाउं के एक जमींदार ने सेनिको ने बैरक निर्माण हेतु पाथर उपलब्ध कराने से इंकार कर दिया | 1837-38 में अल्मोड़ा तथा लोहाघाट में सैनिको को रसद नहीं मिल पा रही थी | 1850 में जब विशाड़ (पिथोरागढ़) के बेगार मुक्त ग्रामीणों से बेगार ली गयी तो उन्होंने सशक्त विरोध किया | 1857 में कुलियों के उपलब्ध होने पर बंदियों से कुली का कार्य कराना पड़ा | उत्तराखंड की ग्रामीण जनता का असंतोष देखकर उच्च न्यायलय ने 1904 में कुली बेगार प्रथा को गैर कानूनी घोषित कर दिया | लेकिन इस निर्णय की उपेक्षा

कर कुली बेगार प्रथा लगातार चलती रही | सन 1916 में कुमाउं परिषद् की स्थापना के बाद 1918 के हल्द्वानीअधिवेशन में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पारित कर संयुक्त प्रांत की सरकार से कहा गया कि दो वर्ष के भीतर कुली उतार. कुली बेगार नामक प्रथाओं को समाप्त किया जाये | राय बहादुर तारा दत्त गैरोला इस अधिवेशन के अध्यक्ष थे | दिसम्बर 1920 में काशीपुर में कुमाउं परिषद् का अधिवेशन हरगोविंद पन्त की अध्यक्षता में हुआ जिसमें कहा गया कि कोई भी व्यक्ति कुली उतार, कुली बेगार प्रथाओं को ना माने और इसका खुल कर विरोध करें | इस अधिवेशन में बद्री दत्त पाण्डेय भी उपस्थित थे | महात्मा गाँधी से मिलने के बाद यह निश्चय किया गया कि जनवरी 1921 में मकर संक्रांति के अवसर पर बागेश्वर में एकत्रित होकर कुलियों के नाम अंकित रजिस्टर को सरयू नदी बागेश्वर में बहा दिया जाएगा | बद्री दत्त पाण्डेय ने सरयू नदी में रजिस्टर को बहा दिया | यह समाचार पूरे उत्तराखंड में आग की तरह फैल गया कि कुली बेगार प्रथा समाप्त हो गयी हैं |लेकिन बेगार और जंगलात की नीतियों की अति ने असंगठित विरोध को संगठित जनांदोलन में बदलने में योग दिया। इस तरह यह आंदोलन किसानों और कस्बाई प्रबुद्धों का साझा कार्यक्रम बन गयाए जिसे 1916 में स्थापित 'कुमाऊं परिषद' के जरिये आगे बढ़ाया गया। अगले चार वर्षों में सुसंगठन का कार्य इतनी तैयारी से हुआ कि 1920 के 'कुमाऊं परिषद' के चौथे अधिवेशन में युवाओं का नेतृत्व उभर कर सामने आ गया। ग्रामीण आंदोलनकारियों की पुकार सुन वे कांग्रेस अधिवेशन से लौटकर बागेश्वर आएए जहां उत्तरायणी मेले में ग्रामीणों की बड़ी उपस्थिति होती थी। बागेश्वर के पास ही चामी गांव में एक जनवरी 1921 को बेगार के विरुद्ध बड़ी सभा हो चुकी थी। कस्बाती प्रबुद्धों के आने से प्रतिरोध और आगे बढ़ा और 12-14 जनवरीए 1921 को बागेश्वर में जनसभाओंए प्रदर्शनों के बाद न सिर्फ सरकार को चुनौती दी गईए बल्कि बेगार के रजिस्टर सरयू में बहा दिए गए। नतीजतन उसी साल सरकार को कुली-बेगार प्रथा बंद करनी पड़ी। प्रतिरोध की ऊर्जा जितनी स्थानीय स्तर पर जन्मीए उतनी ही सीधे राष्ट्रीय संग्राम से भी छनकर आ रही थी। कस्बों से विकसित बद्री दत्त पाण्डेए हरगोविन्द पंतए गोविन्द बल्लभ पंतए चिरंजीलाल या गांवों से विकसित अनुसूया प्रसाद बहुगुणाए मोहनसिंह मेहताए लक्ष्मी दत्त शास्त्रीए केशर सिंह रावतए मंगतराम खंतवालए हरिकृष्ण पाण्डेए ईश्वरी दत्त ध्यानीए हयात सिंहए बद्रीदत्त वैष्णवए प्रेमसिंह गड़िया या विश्वविद्यालयों से लौटे भैरवदत्त धूलियाए बडोला बंधु और प्रयागदत्त पंत या प्रथम विश्वयुद्ध से लड़कर लौटे नौजवान या आम किसान सब एक स्वर और शक्ति में बोलने लगे थे। वर्ष 1878 में सोमेश्वर के ग्रामीणों द्वारा बेगार न देना और सामूहिक जुर्माना भुगतना और 1903 में खत्याड़ी के गोपिया और साथियों द्वारा इलाहाबाद हाई कोर्ट जाकर बेगार को गैर कानूनी घोषित किए जाने का निर्णय लाना ग्रामीण प्रतिरोध के प्रतीक थे।

इसीलिए 1929 में जब महात्मा गांधी कुमाऊं आएए तो वह बागेश्वर जाना नहीं भूले। यंग इण्डिया में उन्होंने कुमाऊं के बेगार और जंगलात आंदोलनों को 'रक्तहीन क्रांति' कहा तथा इसे जनता की संगठन क्षमता और सामूहिक शक्ति से जोड़ा। इन दो असाधारण आंदोलनों की शताब्दी के मौके पर उत्तराखंड की नई पीढ़ी को पिछले सौ साल के जनांदोलनों की विरासत पर सोचने और विश्लेषण करने का विवेक अर्जित करना चाहिए। यह भी कि औपनिवेशिक सत्ता रही हो या हमारी अपनी सरकारेंए उत्तराखंड की जनता ने सड़कए डोला पालकी का हकए गढ़वाल कमिश्नरीए वनाधिकारए नशाबंदीए कुमाऊं तथा गढ़वाल विश्वविद्यालयए नए जिले आदि और अंततः अलग राज्य सिर्फ और सिर्फ जनांदोलनों से अर्जित किएए किसी राजनीतिक दल के उद्यम से नहीं। नए राज्य के दो दशक बहुत उम्मीद नहीं दिलाते। पर प्रतिकारों की राष्ट्रीय और स्थानीय विरासत तटस्थता और उदासी को नई ऊर्जा से युक्त कर सकती है।(7)

इस प्रकार भारत के प्रथम स्वतंत्रता संघर्ष के बहुत उल्लेखनीय प्रभाव इस क्षेत्र में नहीं देखने को मिलते और कुल मिलाकर कमिश्नर रैमजे का शासनकाल शान्तिपूर्ण शासन का काल माना जाता है। इसी दौरान सरकार के अनुरूप समाचारों का प्रस्तुतीकरण करने के लिये 1868 में समय विनोद तथा 1871 में अल्मोड़ा अखबार की शुरूआत हुयी।

उत्तराखंड में अंग्रेजो का शासन 1815 से 1857 तक शांतिपूर्ण और सुव्यवस्थित रहा लेकिन 19 वी सदी के प्रारंभ में निरंतर अकाल की घटनाओ से उत्पन्न अन्न संकट के कारण जनता को जीवन यापन करना मुश्किल हो गया | इस तरह 19 वी सदी के अंत तक आर्थिक निर्भरता और संसाधन के रूप में कृषि का महत्व सीमित हो गया लेकिन फिर भी कृषि ग्रामीण जनता के जीवन का आधार बनी रही | अब जनता ने शिक्षा स्वास्थ्य की पूर्ति के उदेश्य से नए रोजगार के साधनों को ढूढ़ने का प्रयास करने लगे | ब्रिटिश भारत में टिहरी रियासत को छोड़ पूरे हिस्से को कुमाऊं ही कहा जाता था. भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान इस क्षेत्र में क्रांति की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि शहरी क्षेत्र की अपेक्षा क्रांति का सर्वाधिक विस्तार ग्रामीण क्षेत्र में हुआ था. भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान इस क्षेत्र की सबसे महत्तवपूर्ण घटनाएं सालम क्रांतिए सल्ट क्रांतिए देघाट गोली काण्ड और बोरारौ में स्वायत्तशासी सरकार की स्थापना थे.

9 अगस्त 1942 को अल्मोड़ाए नैनीतालए गढ़वाल तथा देहरादून जिलों में जगह-जगह जुलूस निकले और हड़तालें हुई. अल्मोड़ा में 9 अगस्त को एक विशाल जुलूस निकाला गया और 10 अगस्त को नगर भर में हड़ताल रही. इसी दिन नैनीतालए हल्द्वानी पिथौरागढ़ए पौड़ीए देहरादून और कोटद्वार में भी सभाएं हुईं और गिरफ्तारियां प्रारंभ हुईं. कमीश्नर ऐक्टनए डिप्टी कमीश्नरए के.एस.मिश्र तथा इलाका हाकिम मेहरबान सिंह अल्मोड़ा में दमन के लिये पहुंचे. गवरमेन्ट कॉलेज के छात्रों की सेना और पुलिस से खुलकर मुठभेड़ हुई. पुलिस ने उत्तेजित समूह को नियंत्रित करने के नाम पर लाठियां चलाना प्रारंभ किया. जवाब में छात्रों ने पत्थरों से प्रहार किया. जिससे कमिश्नर ऐक्टन को सिर पर चोट आई. अल्मोड़ा शहर पर 6000 हजार रुपये का सामूहिक जुर्माना किया गया | ब्रिटिश सत्ता के विरोध की पहली घटना अल्मोड़ा जिले के देघाट नामक स्थान पर हुई. 19 अगस्त 1942 को चौकोट की तीन पट्टियों की एक वृहद सभा का देघाट में आयोजित किया जाना तय हुआ. इस क्षेत्र में ज्योति राम कांडपालएभैरव दत्त जोशीए मदन मोहन उपाध्यायए इश्वरी दत्त फुलोरिया आदि आंदोलनकारी सक्रिय थे. 19 अगस्त के दिन विनोद (विनौला) नदी के समीप देवी के मंदिर में एक वृहद सभा हुई जिसे पुलिस ने चारों ओर से घेर लिया. शांति पूर्वक चल रही जनसभा के भीतर जाने की हिम्मत पुलिस की न हो सकी लेकिन पुलिस ने सभा से अकेले बाहर निकले एक सत्याग्रही खुशाल सिंह मनराल को हिरासत में ले लिया. जब सत्याग्रहियों को यह बात पता चली तो भीड़ ने घेर कर खुशाल सिंह को छुड़ाने की मांग की. अनियंत्रित भीड़ को काबू में करने के लिये पुलिस ने गोली चला दी. इतिहास में यही घटना देघाट गोली कांड के नाम से जानी जाती है. इस गोली कांड में हरिकृष्ण उप्रेतीए हीरामणि गडोला मौके पर ही शहीद हुए. रामदत्त पांडे और बदरी दत्त कांडपाल को भी इस दौरान गोली लगी. रातों-रात में ही पुलिस शहीदों के शव को देघाट से उदेपुर ले गयी और अगले दिन रानीखेत. अंतिम संस्कार सिनौला में किया गया. इसके 8 दिनों बाद पूरे क्षेत्र में अंग्रेजों द्वारा विद्रोह के दमन के नाम पर सार्वजनिक लूट-पाट की गई. उदयपुरए क्यरस्यारीए सिरमोलीए गोलना और महरौली गांवों में सामूहिक अर्थदंड लगाया गया | पनार नदी के दोनों ओर का हिस्सा सालम पट्टी कहलाता है. सालम क्षेत्र की जनता रामसिंह धौनी के समय से ही जागृत थी. 1930 के बाद दुर्गादत्त पांडेए प्रतापसिंह बोराए रामसिंह 'आजाद'ए रेवाधर पांडे आदि ने बढाया. तिलक दिवस के दिन राष्ट्रीय झंडे का अपमान इस क्षेत्र में क्रांति का प्रमुख कारण माना जाता है. देवीधुरा के मेले में आयोजित सभा में सालम क्षेत्र को स्वाधीन घोषित कर दिया गया. सालम क्रांति से संबंधित प्रमुख व्यक्तियों में प्रताप सिंह बोराए शेरसिंहए रामसिंह 'आजाद'ए रेवाधर पांडेए लछमसिंह आदि हैं. गांधीजी के आदेशानुसार जब रामसिंह 'आजाद' ने फरारी त्याग कर गिरफ्तारी दी तो उन्हें फांसी की सजा सुनाई गई. उनके पक्ष में भूतपूर्व उपराष्ट्रपति गोपालस्वरुप पाठक और इंद्र सिंह नयाल ने अपील की. इसके बाद रामसिंह 'आजाद' को 38 वर्ष की सजा और पांच हजार का जुर्माना तय किया गया. रेवाधर पांडे भूमिगत जीवन से 1947 में प्रकट हुए. भारत छोड़ो आंदोलन की एक महत्वपूर्ण विशेषता भूमिगत आंदोलनकारियों की भूमिका थी. उत्तराखंड क्षेत्र से प्रमुख भूमिगत आंदोलकारियों में मदन मोहन उपाध्यायए मथुरा दत्त भट्टए तारादत्त भारद्वाज आदि थे. अधिकांश भूमिगत सत्याग्रहियों की भूमि नीलाम हो गयी और उनके गांव व परिवार वालों को भीषण यातनाएंड दी गईं. बहुत से भूमिगत आंदोलनकारियों ने उग्रवादी कार्यक्रम जैसे तार काटनाए डाक बंगले या सरकारी सम्पत्तिए लीसाएलकडी डीपो जलानाए डाकखानोंए पुलोंए मार्गों को क्षति पहुंचानाए में भाग लिया. इनमे शामिल आंदोलनकारियो में श्यामलाल वर्माए दीवान सिन्हए शंकरदत्त त्रिपाठीए शिवसिह लक्ष्मीदत्त पांडेए चंद्रदत्त तिवारी तथा अम्बादत्त बेलवाल प्रमुख थे. गढ़वाल जिले में इस कार्य में कप्तान नौटियालए छवाण सिह नेगीए हरिराम मिश्र आदि प्रमुख थे. 26 जनवरी 1943 को दिल्ली में वायसराय निवास के सामने वर्तमान विजय चौक पर जिन सत्याग्रहियो ने तिरंगा फहराकर भय और आश्चर्य पैदा कर दिया था उनका नेतृत्व करने वाले फरार कवि श्रीराम शर्मा 'प्रेम' थे |1944 के बाद पूरे देश की तरह राज्य में भी भारत छोड़ो आंदोलन सुस्त होने लगा था. भारत छोड़ोआंदोलन के दौरान उत्तराखंड के आम ग्रामीणों ने न केवल जेलों में बल्कि घरों में भी कुर्बानी दी. परिवारों की तबाही हुई. यह सब सहा गया क्योंकि इसके पीछे आजाद हिंदुस्तान का सपना था.(8) 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता का समाचार सुनकर पूरा उत्तराखंड झूम उठा कुमाउं में जलूस, प्रभातए फेरियां और जनगीतों के साथ स्थान-स्थान पर झंडा फेहराया गया | कुछ भी हो इस स्वतंत्रता संग्राम के आन्दोलन मियन उत्तराखंड वासी निरंतर ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ लड़ते रहे |

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भसीनए अनीस. भारत के राज्य. प्रभात प्रकाशन. पृ॰ 47-48. मूल से 5 मार्च 2016 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 6 जून 2015.
2. "History of Uttaranchal" मूल से 4 मार्च 2016 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 6 जून 2015.
3. "Notes on Nepal". मूल से 4 मार्च 2016 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 6 जून 2015.
4. Robert Montgomery Martin, History of the Possessions of the Honourable East India Company, Volume 1, pg. 107
5. Tehri – History Archived 2008-09-23 at the Wayback Machine New Tehri Official website.
6. मित्तलए अरुण कुमार. British Administration in Kumaon Himalayas: A Historical Study, 1815-1947. पृ॰ 17-18. मूल से 4 मार्च 2016 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 6 जून 2015.
7. https://www.amarujala.com/columns/opinion/hundred-years-of-forced-labor-movement-in-uttarakhand-the-story-of-exploitation-ended-in-this-way
8. पाठक शेखर, सरफरोशी की तमन्ना